

महाकवि समयसुंदर और उनका छत्तीसी-साहित्य

राजस्थान में अक कहावत है—‘समयसुंदर—रा गीतड़ा, कुंभे रागो—रा भीतड़ा’ अर्थात् जिस प्रकार महाराणा कुंभा द्वारा बनवाये हुये संपूर्ण मकानों, मंदिरों, स्तंभों और शिलालेखों आदि का पार पाना अत्यंत कठिन है उनी प्रकार समयसुंदरजी विरचित समस्त गीतों का पता लगाना भी दुष्कर कृत्य है; उनके गीत अपरिमित हैं। यह महाकवि समयसुंदर १७ वीं शताब्दी के लब्धप्रतिष्ठ राजस्थानी जैन कवि हुअे हैं। उनका जन्म पोरवाल जातीय पिता श्री रूपसिंह और माता लीलादेवी के यहाँ अनुमानतः संवत् १६१० में सांचोर (सत्यपुर) में हुआ। बाल्यावस्था में ही उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर क्रमशः महोपाध्याय-पद प्राप्त किया। मधुर-स्वभावी महाकवि अपनी अप्रतिम विद्वत्ता और अतूठे व्यक्तित्व से अपने जीवन-काल में ही प्रशंसित हो चुके थे। उन्होंने भारत के अनेक प्रदेशों का भ्रमण करके अपनी नानाविध रचनाओं और सदुपदेशों द्वारा तत्रस्थ जनसमुदाय को कल्याणपथ की ओर अग्रसर किया। सौभाग्यवश महाकवि ने दीर्घायु प्राप्त की थी। सं० १७०३ में उन्होंने चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन अहमदाबाद में समाधिपूर्वक नश्वर देह को त्यागकर स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया। अपनी इस दीर्घायु में महाकवि ने संस्कृत, प्राकृत और राजस्थानी की अनेक रचनाओं कीं। ‘इनकी योग्यता अर्बं बहुमुखी प्रतिभा के संबंध में विशेष न कहकर यह कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी कि कलिकाल सर्वज्ञ हेमचंद्राचार्य के पश्चात् प्रत्येक विषयों में मौलिक सर्जनकार अर्बं टीकाकार के रूप में विपुल साहित्य का निर्माता (महाकवि समयसुंदर के अतिरिक्त) अन्य कोई शायद ही हुआ हो!’^१ ‘सीताराम—चौपई’ नामक वृहत्काय जैन रामायण महाकवि की प्रतिनिधि रचना है। उनके अपरिमित गीत भी बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। महाकवि के संबंध में विस्तृत जानकारी अर्बं उनकी लघु रचनाओं के रसास्वादन के लिये श्री अग्रचंद्र नाहटा और मँवरलाल नाहटा संपादित ‘समयसुंदर—कृति—कुसुमांजलि’ दृष्टव्य है। यहां प्रस्तुत है महाकवि के छत्तीसी-साहित्य का संक्षिप्त परिचय।

छत्तीसी

मुक्तक रचनाओं का अक प्रकार है ‘छत्तीसी’। अंसी रचना जिसमें छत्तीस पद्य हों, छत्तीसी कहलाती है। इसमें छंद कोई भी हो सकता है, पर उसके संपूर्ण पद्यों का उसी छंद में होना आवश्यक है। कहीं—कहीं छत्तीस के स्थान पर सैंतीस पद्य भी देखने को मिलते हैं, परंतु वहां सैंतीसवां पद्य रचना के विषय से थोड़ा भिन्न और उसका उपसंहार—सूचक होता है। इसी प्रकार इन छत्तीसियों का विषय कोई भी हो सकता है, पर वर्णनात्मकता और औपदेशिकता की इनमें प्रधानता पायी जाती है।

१. महोपाध्याय विनयसागर :

‘समयसुंदर कृति कुसुमांजलि’ गत निबंध

‘महोपाध्याय समयसुंदर’ पृष्ठ १.

(प्रकाशक—नाहटा ब्रदर्स, ४ जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता—७).

महाकवि समयसुंदर विरचित सात छत्तीसियां उपलब्ध हैं जो इस प्रकार हैं—

१. सत्यासीया दुष्काल वर्णन छत्तीसी
२. प्रस्ताव सबैया छत्तीसी
३. क्षमा छत्तीसी
४. कर्म छत्तीसी
५. पुण्य छत्तीसी
६. संतोष छत्तीसी
- और ७. आलोचना छत्तीसी ।

(१) सत्यासिया दुष्काल वर्णन छत्तीसी

प्रस्तुत छत्तीसी की रचना महाकवि ने वि० सं० १६८७-८८ में गुजरात में की। ऋद्धि-सिद्धि से सर्वथा संपन्न गुजरात प्रदेश में वि० सं० १६८७ में बड़ा भयंकर दुष्काल पड़ा। बरसात का नामोनिशान न था। घनघोर घटाये घिर घुमड़कर आती और कृषक-समुदाय को चिढ़ाकर गायब हो जाती थीं। खेत सूखे पड़े थे। पानी के अभाव में लोगों में खलबली मच गई।^१ खाने की समस्या विकट रूप में आ पहुँची। पशुओं को तो कुछ अंशों में, आस पास के नगरों की सीमाओं पर, जहां थोड़ी-बहुत वर्षा हुई थी, चरने के लिये भेज दिया गया, परंतु लोगों को अपने ही भोजन की व्यवस्था करना मुश्किल हो गया। खाद्य-सामग्री के लिये परस्पर लूट-मार होमे लगी। महंगाई का पार न रहा। प्रजावत्सल नरेशों ने अपनी जनता के लिये सस्ते अनाज की व्यवस्था की भी तो लोभी हाकिमों ने अपने पास जमाकर उसे महंगे मोल बेचना प्रारंभ कर दिया था।^२

असी स्थिति में लोगों को आधा पाव अन्न तक मिलना भी दुर्लभ हो गया। मान त्यागकर भीख मांगने से भी लोगों का पेट नहीं भरता था। वृक्षों के पत्ते, कांटी (घास विशेष) और छालें खाने की भी नौबत आई। जूठन खाना-पीना तो सामान्य बात हो गई थी।^३

श्रेम और ममत्व नाम की कोई चीज उस समय नहीं रह गई थी। पति पतिन को, बेटा बाप को, बहन भाई को, भाई बहन को छोड़-छोड़कर परदेश को भागने लगे। परिवार का सम्बन्ध अन्न-श्रेम के आगे गौण हो गया। अपने आत्मज, अंखों के तारे प्यारे पुत्र को बेचना पिता के लिए रंचमात्र भी दुष्कर नहीं था।

१. घटा करी घनघोर, पिण वूठो नहीं पापी ।
खलक लोग सहू खलभल्या, जीवई किम जलबाहिरा;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, ते ऋतूत सहू ताहरा ।३।।
(समयसुंदर कृति कुसुमांजलि, पृ० ५०१)

२. भला हुंता भूपाल, पिता जिम पृथ्वी पालइ;
नगर लोग नरनारी, नेह सुं नजरि निहालइ ।
हाकिम नइ हुतो लोभ, घान ते पोते धारइ;
महा मुंहगा करि मोल, देखि बेचइ दरबारइ ॥
(समयसुंदर कृति कुसुमांजलि, छंद ६, पृ० ५०२)

३. अध पा न लहै अन्न, भला नर थया भिखारी;
मूकी दीधउ मान, पेट पिण भरइ न भारी ।
पमाडीयाना पांन, केइ बगरौ नइ कांटी;
खावें खेजइ छोड, शालितूस सवला वांटी ।
अन्नरुण चुणइ अइंठि में, पीयइ अइंठि पुसली मरी ।
समयसुंदर कहइ सत्यासीया, अह अवस्था तइ करी ॥८॥ (स. कृ. कु. पृ० ५०३)

यतियों को अपना पंथ बढ़ाने का सुअवसर मिल गया। लोग पथ-विचलित होने लगे। बंधा उठने से धर्म और धर्म की जड़े खिसक उठीं। श्रावकों ने साधुओं की सार-सँभाल छोड़ दी। शिष्यों ने भूख से बाधित हो उदरपूर्ति के लिये गुरुओं को ही पत्र-पुस्तकें, वस्त्र-पात्रादि बेचने के लिए विवश किया।^१

धर्म-ध्यान भी लुप्त होने लग गया था। भूख के मारे भगवान का भजन किसे भाता है। श्रावक लोगों ने मन्दिरों में दर्शन करने जाना छोड़ दिया। शिष्य ने शास्त्राध्ययन बन्द कर दिया। गुरुवन्दन की तो परंपरा ही उठ गई। गच्छों में व्याख्यान-परंपरा मंद पड़ गई। लोगों की बुद्धि में फेर आ गया था।^२

अनेक लक्षाधीश साहूकारों की सहायता के उपरांत उस 'भुखमरी' में अनेक मनुष्य बेमौत मरे। उनकी अर्थियाँ उठाने वाले ही नहीं मिल रहे थे। घरों में हाहाकार मच रहा था और गलियों तथा सड़कों पर शवों की दुर्गंध व्याप्त थी।^३ अनेक सूरि-गच्छपतियों को भी हत्यारे काल ने अपने गाल में ले लिया।

स्वयं कवि पर भी इस प्रबल दुष्काल के कई तमाचे पड़े। पीष्टिक भोजन के अभाव में उसकी काया कृश हो गई। उपवासों से रही-सही शक्ति भी चली गई। धर्मध्यान और गुरुगुणगान ही उसके जीवन-पथ का संबल रह गया था।^४ असे भीषण अकाल के समय यद्यपि शिष्यों ने कवि की कम ही सार-सँभाल ली, किंतु अन्य अनेक श्रावकों और सेवाव्रतियों ने यथासामर्थ्य साधुओं और भिखारियों आदि के भोजन की व्यवस्था की जिनमें प्रमुख थे—सागर, करमसी, रतन, बछराज, ऊदो, जीवा, सुखिया वीरजी, हाथीशाह, शाह लट्ठका, तिलोकसी आदि। अहमदाबाद में प्रतापसी शाह की प्रोल में रोटी और बाकला बाटने की व्यवस्था

१. दुखी यथा दरसणी, भूख आधी न खमावइ । श्रावक न करी सार, खिण धीरज किम थायइ ।
चेले कीधी चाल, पूज्य परिग्रह परहउ छांडउ । पुस्तक पाना बेचि, जिम तिम अम्हनइ जीवाडउ ॥
(स. कृ. कु. छंद १३, पृष्ठ ५०५)
२. पडिकमणउ पोसाल करण को श्रावक नावइ;
देहरा सगला दीठ, गीत गंधर्व न गावइ ।
शिष्य भणइ नहीं शास्त्र, मुख भूखइ मचकोडइ;
गुरुवंदण गइ रीति, छती प्रीत माणस छोडइ ।
बखाण खाण माठा पड़या, गच्छ चौरासी एही गति;
'समयसुंदर' कहइ सत्यासीया, कांइ दीधी तइ ए कुमति ॥१५॥ (स. सुं. कृ. कु. पृ० ५०५)
३. मूआ घणा मनुष्य, रांक्र गलीए रडवडिया;
सोजो वलयउ सरीर, पछइ पाज मांहे पडिया ।
कालइ कवण वलाइ, कुण उपाडइ किहां काठी;
तांणी नाखया तेह, मांडि थइ सगली माठी ।
दुरगंधि दशोदिशि ऊछली, माडा पाज्या दीसइ मूसा ।
समयसुंदर कहइ सत्यासीया, किरण घरि न पज्या कूकुआ ॥१७॥ (स. कृ. कु. पृ० ५०६)
४. पछि आव्यउ मो पासि, तु आवतउ मइ दीठउ;
दुरबल कीधी देह, म करि कहाउ भोजन मीठउ ।
दूध दही घृत घोल, निपट जीमिवा न दीघा ।
शरीर गमाडि शक्ति, कई लंघन परिण कोघा ।
धर्म ध्यान अधिका धर्या, गुरुदत्त गुणणउ पिरण गुण्यउ;
समयसुन्दर कहइ सत्यासीया, तु नै हाक मारिनइ मइ हण्यउ ॥ १६॥ (स. कृ. कु. पृ० ५०७)

की गई थी ।^१ कवि ने लिखा है कि भगवान महावीर के काल से लेकर अब तक तीन द्वादशवर्षीय दुष्काल पड़े थे किंतु जैसा संहार उस वर्ष के अकाल में हुआ, वैसा पूर्व के उन लंबे अकालों में भी नहीं हुआ ।^२

और इस सत्यानाशी 'सत्यासीये' का शमन किया 'अठ्यासीया' (वि० सं० १६८८ के वर्ष) ने । वर्ष के आरंभ में ही खूब जोरों की वर्षा हुई । धरती धान से हरी-भरी हो उठी । लोगों में धैर्य का संचार हुआ । खाद्य पदार्थ सस्ते हो गये । लोगों का उल्लास लहरें लेने लगा । 'मरी' और 'मांदगी' (महामारी) मुंह मोड़ चले । हां साधुओं की दशा अभी तक चिंतनीय थी ।^३ धीरे-धीरे उनकी भी सेवा और आदर की ओर ध्यान दिया गया । इस प्रकार गुजरात में पुनः आनन्द का साम्राज्य हो गया ।

बड़ी सुन्दर और सरस शैली तथा सरल भाषा में लिखित इन मुक्तकों में कवि ने खुलकर अपनी भावुकता-सहृदयता का परिचय दिया है । जहाँ अकेले और वह तत्कालीन प्रजा की दयनीय स्थिति का चित्रण करता है, वहाँ दूसरी ओर वह उस दुष्काल को जमकर गालियाँ भी निकालता है । अकाल के प्रति की गई इन कटुवक्तियों में कवि की कलात्मकता तो भलकती ही है, मानवता के प्रति उसका अगाध स्नेह भी इनमें परिलक्षित होता है । और सच तो यह है कि इस स्नेह भावना के कारण ही उसकी इन उक्तियों का उद्भव हुआ है—

१. समयसुंदर कहइ सत्यासीयउ, पड़्यो अजाण्यउ पापीयउ ॥२॥

२. दोहिलउ दंड माथइ करी, भीख मंगावि भीलड़ा ।

समयसुंदर कहइ सत्यासीया, थारो कालो मुंह पग नीलड़ा ॥५॥

३. कूकीया घणुं श्रावक किता, तदि दीक्षा लाभ देखाडीया ।

समयसुंदर कहइ सत्यासीया, तइ कुटुंब बिछोडा पाडीया ॥१०॥

४. सिरदार घणोरा संहर्या, गीतारथ गिणती नहीं ।

समयसुंदर कहइ सत्यासीया, तुं हतियारउ सालो सही ॥१८॥

५. दरसणी सहनइ अन्न द्यई, थिरादरे थोभी लिया ।

समयसुंदर कहइ सत्यासीया. तिहां तुं नइ धक्का दिया ॥२५॥

६. समयसुंदर कहइ सत्यासीयउ, तुं परहो जा हिव पापीया ॥२८॥

रसों में करुण और अलंकारों में अनुप्रास की प्रधानता है । छंद सवैया है । भाषा गुजराती मिश्रित

१. स. कृ. कु. छंद २१-२३; पृ० ५०७-८,

२. महावीर थी मांडी, पड्या त्रिण बेला पापी;

बार बरषी दुःकाल, लोक लीधा, संतापी

परिण अकलइ अक तइ ते कीयउ, स्युं बार वरसी बापड़ा;

समयसुन्दर कहइ सत्यासीया, बार लोके न लह्या लाकड़ा ॥२६॥ (स. कृ. कु. पृ० ५०६)

३. मरगी नइ मदवाडि, गया गुजरात थी नीसरि;

गयउ सोग संताप, घणो हरख हुयउ घरि घरि ।

गोरी गावइ गीत, वली विवाह मंडाणा.,

लाडू खाजा लोक, खायइ थाली भर मांणा ॥

शालि दालि घृत घोल सुं, भला पेट काठा भर्या ।

समयसुन्दर कहइ अठ्यासीया, साघ तउ अजे न सांभर्या ॥३३॥ (स. कृ. कु. पृ० ५११)

सरल और मुहाबरेदार राजस्थानी है ।

इस प्रकार महाकवि ने गुजरात के उस भीषण दुष्काल का आँखों देखा हाल अपनी इस छत्तीसी में वर्णन किया है जो रोमांचकारी तो है ही, प्रत्यक्षदर्शी द्वारा वर्णित होने के कारण अतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है ।

(२) प्रस्ताव सबैया छत्तीसी

इस रचना में विविध विषयों पर प्रस्तावना के रूप में (प्रास्ताविक) कहे गये ३७ उपदेशात्मक सबैये हैं जिनकी रचना ^१ कवि ने सं० १६६० में खंभात में की ।

वर्ण्य-विषय

संपूर्ण कृति में ईश्वर, मनः शुद्धि, संसार के प्रति अनासक्ति, धर्मकृत्यों की महत्ता, दुष्कृत्यों के दुष्परिणामों आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है ।

ईश्वर-साक्षात्कार के विषय में कवि कहता है—सब कोई परमेश्वर-परमेश्वर चिल्लाते हैं किंतु उन्हें देख तो विरला ही पाता है । सचमुच वह कोई योगीश्वर ही होता है जिसे परमेश्वर के दर्शन होते हैं—

‘समयसुंदर’ कहइ जे जोगीसर, परमेसर दीठउ छइ तिणइ’ ॥१॥

उस परमेश्वर को कोई ईश्वर कहता है तो कोई वेद-विधायक ब्रह्मा, कोई उसे कृष्ण के रूप में मानता है तो कोई अल्लाह के रूप में और कोई उसे ही सृष्टि का कर्ता, पालक और संहर्ता मानता है । किंतु कवि की मान्यता है कि परमेश्वर की महानता की थाह पाना किसी के वश की बात नहीं, वह (कवि) तो मात्र ‘कर्म’ को ही ‘कर्त्ता’ रूप में जानता है—

‘समयसुंदर कहइ हुं तो मानुं, करम एक करता धू वेद’ ॥२॥

धर्म की उपयोगिता की व्याख्या कवि ने इस प्रकार की है—यज्ञ तथा पंचाग्नि आदि की कठिन साधनाओं करके कोई यह मान बैठे कि हम मुक्त हो जायेंगे सो असी बात नहीं । सब धर्मों का मूल तत्त्व है—दया । जो व्यक्ति शास्त्रोक्त दया-धर्म का पालन करता है उसे ही जैन-धर्म दुराचारों के गर्त में गिरने से बचाता है । अतः मुक्तिकामी को निस्संकोच हो आस्थापूर्वक धर्मकृत्य करने चाहिये क्योंकि इनके अभाव में किया गया धर्मकृत्य निष्फल होता है—

संका कंखा सांसउ म करउ कियउ धरम सहु धूडि मिलइ ।

× × × ×

समयसुंदर कहइ आस्ता आणी धर्म कर्म कीजइ ते फलइ’ ॥१०॥

धर्म के संबंध में कवि ने दूसरी बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण बतलाई है और वह यह कि किसी भी गच्छवाद् के भ्रंश में न फँसकर मुक्तिकामी को केवल मन को निर्मल बनाने का प्रयास करना चाहिये ।

१. संवत् सोलनेउया वरषे श्री खंभाइत नयर मभारि;

कीया सवाया ख्याल विनोदइ मुख मंडण श्रवणे सुखकारि ।

(स० कृ० कु० पृ० ५२२, छंद ३७)।

उसके बिना, चाहे कितना ही मूंड मुंडाओ, जटा बडाओ, नग्न रहो, पंचाग्नि साधना करके और काशी में करवत लेकर कष्ट सहो, भस्मी लगाकर भिक्षा मांगो, मौन धारण करो चाहे कृष्ण नाम जपो, मुक्ति प्राप्त करना सर्वथा दुर्लभ है—

कोलो करावउ मुंड मुंडावउ, जटा धरउ को नग्न रहउ ।
को तप्प तपउ पचाग्नि साधउ कासी करवत कष्ट सहउ ।
को भिक्षा मांगउ भस्म लगावउ मौन रहउ भावइ कृष्ण कहउ ;
समयसुंदर कहइ मन सुद्धि पाखइ, मुगति सुख किमही न लहउ ॥१६॥

इसी प्रकार बिना धर्मकृत्यों के नर की संपूर्ण मान-प्रतिष्ठा और नारी का संपूर्ण साज-शृंगार भी निस्सार है—

मस्तिकि मुगट छत्र नइं चामर बइंसठ सिंहासन नइं रोकि ;
आण दांण बरतावइ अपणी आज नमइ नर नारी लोक ।
राजरिद्धि रमणी धरि परिघल जे जोयइ ते सगला थोक ।
परिण समयसुंदर कहइ जउ धम न करइ, तउ ते पाम्युं सगलुं फोक ॥२०॥
सीसफूल स मथउ नकफूली, कानई कुंडल हीयइ हार ।
भालइ तिलक भली कटि मेखल बांहे चूड़ि पुणछिया सार ॥
दिव्य रूप देखंती अपछर, पणि नेउर भांभर भरणकार ।
परिण समयसुंदर कहइ जउ धम न करइ, तउ भार भूत सगलौ सिणगार ॥२१॥

इसलिसे मांस-भक्षण, मदिरापान, विजया-सेवन, चोरी, असत्य भाषण, परदार-रति आदि समस्त नरक के द्वारों से विमुख होकर मुमुक्षु को अविलंब धर्म-साधना में लग जाना चाहिये क्योंकि यह आयुष्य पल प्रतिपल बीता जा रहा है और बीता हुआ समय किसी भी प्रकार से हाथ नहीं आ सकता ।

संसार-मुख के विषय में भी कवि का दृष्टिकोण स्पष्ट है । उसके अनुसार संसार में आज सच्चा सुखी कोई नहीं । यहां कोई विधुर है तो कोई निस्संतान, कइयों के पास खाने को अन्न नहीं है तो कई रोगाक्रांत और शोकाविष्ट हैं । कहीं विधवाओं छाती पीटती दृष्टिगत होती हैं तो कहीं विरहिणियां छतों पर खड़ी काग उड़ाती हैं । सबको किसी न किसी प्रकार का दुःख है ही । ये सब दुख मनुष्य को अपने पूर्वकृत कर्मों के कारण भोगने होते हैं ।

कर्म की गति भी बड़ी विचित्र है । महान व्यक्तियों को भी कर्मों के फल तो भोगने ही पड़ते हैं चाहे वे सत् हों अथवा असत् । इस कर्मबंधन के कारण ही महावीर के कानों में कीलें गाड़ी गईं, राजा हरिशचंद्र को चांडाल के घर पानी भरना पड़ा । राम-लक्ष्मण को वनवास की कठोर यातनाओं सहनी पड़ी तथा रावण जैसे महान पराक्रमी को स्वर्णमंडित लंका और लंका ही क्यों, प्राणों तक से हाथ धोना पड़ा—

महावीर नई काने खीला, गोवालिए ठोक्या कहिवाय,
द्वारिका दाह पांगी सिर आण्यउ, चंडाल नई घरि हरिश्चंद राय ।
लखमण राम पांडव बनवासि, रावण बध लका लू टाय,
समयसुन्दर कहइ कहउ ते कहुं पणि, करम तणी गति कही न जाय ॥ २८॥

इस कर्म-प्रधानता का अंक और पहलू भी कवि ने हमारे सम्मुख उपस्थित किया है। कर्मों (भाग्य) द्वारा ही सबको दुःख सुख भोगने होते हैं, यह मानकर किसी को हाथ पर हाथ रखकर बैठ भी नहीं जाना चाहिये। अनवरत उद्यम का भी अपना विशिष्ट महत्त्व है। कविवर इन दोनों को मान्यता प्रदान करते हैं—

बखत मांहि लिख्यउ ते लहिस्यइ, निश्चय बात हुयइ हुणहार,
एक कहई काछइ बांधीनई उद्यम कीजइ अनेक प्रकार ।
नीखण करमां वाद करंतां इम भगइउ भागउ पहुतौ दरबारि ।
समयसुन्दर कहइ बेऊ मानउं, निश्चय मारग नई व्यवहार ॥२९॥

कर्म और उद्यम की व्याख्या के बाद कवि ने लोकव्यवहार के संबंध में भी कुछ बातें बतलाई हैं। लोकव्यवहार में आदमी को बड़ा सतर्क रहना चाहिये। परनिंदा और आत्मप्रशंसा से विलग होकर सदैव अपने आपको तुच्छ एवं दूसरों को महान मानना चाहिये। वस्तुतः दूसरों की निंदा करने में रखा ही क्या है? सब अपने-अपने कर्मों का फल तो भोग ही लेते हैं। पर निंदक को कोई पूछता तक नहीं, उसकी गिनती चांडालों में की जाती है। जिनका स्पर्श तक करने में लोग घृणा का अनुभव करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को नर्क की कठोर यातनाओं सहनी पड़ती हैं—

अपणी करणी पार उतरणी पार की वात मई कांइ पड़उ,
पूठि मांस खालउ परनिंदा लोकां सेती कांइ लड़उ ।
(निंदा म करउ कोइ केहनीं तात पराई मैमत पड़उ)
निंदक नर चंडाल सरीखउ, एहनई मत कोई आभइउ,
समयसुन्दर कहइ निंदक नर नई नरक मांहि वाजिस्यइ दड़उ ॥३३॥

परनिंदा और मिथ्या भाषण—इन दोनों से दूर रह इस संसार को असार मानकर पंच महाव्रतों का पालन करते हुए जो लोग जप तप और उत्कृष्टी क्रिया करते हैं, निस्संदेह उन्हीं विरल व्यक्तियों को सच्चे जिन-धर्मोपासक कहा जा सकता है।

अंत में कवि जैन-धर्म की महानता को स्वीकार करता हुआ यह कामना करता है कि इस जन्म के बाद आगे भी वह किसी जैन-धर्मावलंबी के यहां ही उत्पन्न हो—

साचउ एक धरम भगवंत नउ दुरगति पड़तां छइ आधार ।
समयसुन्दर कहइ जैन धरम जिहां तिहां हइज्यो माह अवतार ॥३७॥

(३) क्षमा छत्तीसी

प्रस्तुत छत्तीसी में पूरे छत्तीस पद्य हैं जो नागोर,^१ में लिखे गये। क्षमा का महत्व और क्रोध के दुष्परिणामों का प्रदर्शन करना ही इसमें कवि का प्रमुख उद्देश्य रहा है। प्रारम्भ में ही कवि अपने जीव को समझता है—

आदर जीव क्षमा गुण आदर, म करि राग नइ द्वेष जी ।
समता ये शिव सुख पामीजे, क्रोधे कुगति विशेष जी ॥१॥

वर्ण्य-विषय

अपने इसी कथन (कृति के प्रमुख उद्देश्य) को और स्पष्ट करने के लिये कवि ने यहां अनेक असे प्रसिद्ध महान पुरुषों का स्मरण किया है जिन्होंने क्षमा गुण के द्वारा अपना उद्धार किया और अनेक ऐसे दुष्टात्माओं की गर्हणा भी की है जिन्होंने क्रोध के वशीभूत हो अनेक दुष्कृत्य किये और अंततः पाप के भागी हुये। इनके नाम इस प्रकार हैं—सोमल ससुर और गजसुकुमाल, कोणिक और वेश्या, स्वर्णकार और मेतार्य ऋषि, खंघकसूरि के शिष्य, सुकोशल साधु, ब्रह्मदत्त, चंडरुद्र, सागरचंद्र, चंदना, मृगावती, सांब-प्रद्युमन, भरत-बाहुवली, प्रसन्नचंद्र ऋषि, स्थूलिभद्र आदि। दो-तीन प्रसंग इस प्रकार है:—

ध्यानवस्थित गजसुकुमाल के चारों ओर मिट्टी की पाल बांधकर उसके ससुर सोमल ने अग्नि द्वारा उसका सिर जला दिया था किंतु गजसुकुमाल हिला तक नहीं और अंत में इस क्षमा के परिणामस्वरूप मृत्युपरांत उसे मुक्ति की प्राप्ति हुई—

सोमल ससुरे सीस प्रजात्यउ, बांधी माटीनी पाल जी ।
गज सुकुमाल क्षमा मन धरतउ, मुगति गयउ तत्काल जी ॥४॥

क्षमामूर्ति मृगावती पर उसकी गुरुनी चंदना ने, उसके भगवान के दर्शन करके रात्रि में जरा देर से आने के कारण क्रोध किया था, उसकी भर्त्सना की थी किंतु मृगावती ने बिना टस-से-मस हुये सब कुछ सहन कर लिया। इसी क्षमाशीलता के प्रभाव से मृगावती को केवल ज्ञान हुआ और तदनंतर मोक्षप्राप्ति भी।

क्रोधावेश में क्षमा जादू का सा प्रभाव ला देती है यह भरत और बाहुवली के चरित्र से भी जाना जा सकता है। किंतु जो क्रोधपूर्वक ही अपना जीवन व्यतीत करता है उसके पूर्वसंचित शुभ कर्मों का ह्रास होने लगता है। मुनि स्थूलिभद्र ने अक चातुर्मास में कोश्या को दीक्षित किया जिससे उनके गुरु ने उन्हें तीन बार धन्यवाद दिया जब कि अन्य शिष्यों को अक ही बार। इससे अक शिष्य को, जिसने उक्त चातुर्मास अक सिंह की गुफा पर बिताया था, स्थूलिभद्र पर क्रोध आ गया। उसने भी विशेष धन्यवाद पाने की

१. नगर मांही नागोर नगीनउ, जिहां जिनवर प्रासाद जी ।
श्रावक लोग वसइ अति सुखिया, धर्म तरणइ परसाद जी ॥३४॥
क्षमा छत्तीसी खाते कीधी, आत्मा पर उपगार जी ।
सांभलतां श्रावक पण समझ्या, उपसम धर्यउ अपार जी ॥३५॥
(स. कृ. कु. पृ० ५२६)

कामना से अगले चातुर्मास पर कोश्या वेश्या के यहां रहने की गुरु से अनुमति चाही । आदेश मिलने पर वह वहां गया, किंतु पूर्वोक्त क्रोध के कारण वह संयम-पथ से विचलित हो गया और चातुर्मास के बीच में ही उसे कोश्या को प्रसन्न करने के लिए रत्नकंबल लाने के लिये नेपाल जाना पड़ा—

सिंह गुफा वासी ऋषि कीघउ, धूलिभद्र ऊपर कोप जी ।
वेश्या वचने गयउ नेपाले, कीघउ संजम लोप जी ॥ २८॥

हलाहल विष प्राणी को अके ही बार मारता है किंतु क्रोध उससे भी अधिक बलिष्ठ है । अनेक बार किया गया क्रोध उतनी ही बार प्राणी को मृतकवत् बना देता है । क्रोधावस्था में किये जप, तप आदि सुकृत्य किसी भी काम के नहीं रहते और वैसे क्रोध से लाभ भी तो कुछ नहीं होता । क्रोधी स्वयं उस कोपाग्नि में जलता है और दूसरों को भी जलाता है—

विष हलाहल कहियइ विर्यउ, ते मारइ इक वार जी ।
पण कषाय अनंती वेला, आपइ मरण अपार जी ॥३१॥
क्रोध करंता तप जप कीघा, न पड़ई काइ ठाम जी ।
आप तपे पर नइ संतापइ, क्रोध सुं केहो काम जी ॥३२॥

अंत में कवि क्षमा-गुण पर रीझ कर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता दृष्टिगत होता है—

क्षमा करंता खरच न लागइ, भांगे कोइ कलेस जी ।
अरिहंन देव आराधक थावइ, व्यापइ सुयश प्रदेश जी ॥३३॥

(४) कर्म छत्तीसी

इस छत्तीसी में भी कुल छत्तीस पद्य हैं जिनकी रचना मुलतान नगर में सं० १६६८ के मार्गशीर्ष शुक्ला ६ के दिन हुई ।^१

वर्ण्य विषय

इस रचना में कवि ने कर्म की सबलता का उल्लेख किया है । प्रत्येक जीवधारी कर्मों के वशीभूत है ।^२ बिना कर्मों के फल को भोगे कोई भी उनसे विमुक्त नहीं हो सकता । अतुलबली तीर्थंकर और चक्रवर्ती तथा वासुदेव-प्रतिवासुदेवों तक को कर्म अपने चंगुल में फँसाये रखते हैं ।^३

कृति में कवि ने उन पौराणिक महान आत्माओं की नामावली दी है जिन्हें कि कर्म की कठोर विडंबना सहनी पड़ी थी । प्रमुख नाम इस प्रकार हैं—भगवान आदिश्वर, मल्लिनाथ तीर्थंकर,^४ भगवान

१. सकलचंद्र सदगुरु सुपसाये सोलह सइ अइसठु जी ।

करम छत्तीसी ए मइ कधी, माह तरणी सुदी छठु जी ॥३५॥

—कर्म छत्तीसी (स. कृ.कृ. पृ० ५३३)

२. कर्मथी को छूटइ नहीं प्राणी, कर्म सबल दुख खाणजी ।
कर्म तरणइ बस जीव पड्या सहु, कर्म करइ ते प्रमाण जी ॥१॥
३. तीर्थंकर चक्रवर्ति अपुल बल, वासुदेव बलदेव जी ।
ते पणिए कर्म विटंब्या कहिये, कर्म सबल नितमेव जी ॥२॥
४. मल्लिनाथ तीर्थंकर लाघउ, स्त्री तरणउ अवतार जी ।
तप करतां माया तिए कीघी, करमे न गिणी कार जी ॥६॥

महावीर, सगर राजा, ब्रह्मदत्त, सनस्कुमार, कृष्ण, ^१ रावण, ^२ राम, ^३ कंडरीक, कोशिक, मुंज, ^४ ढंढण ऋषि, ^५ सेलग आचार्य, नंदिषेण, सुकुमालिका आदि अनेक सतियां इत्यादि इत्यादि ।

अंत में जैसे क्लिष्ट कर्मों के क्लेश से बचने के लिये कविवर ने इस छत्तीसी का श्रवण करना और धर्मकृत्यों का सेवन करना हितकर बतलाया है ।

करम छत्तीसी काने सुणि नइ, करजो व्रत पच्चखाण जी ।

समयसुंदर कहई सिब सुख लहिस्यउ, धर्म तराण परमाण जी ॥३६॥

(५) पुण्य छत्तीसी

प्रस्तुत छत्तीसी की रचना महाकवि ने संवत् १६६६ में सिद्धपुर में की ।^६

रचना में कुल ३६ पद्य हैं जिनमें पुण्यकृत्यों का माहात्म्य प्रदर्शित है । रचना के माध्यम से कवि समाज में पुण्य-कृत्यों का प्रचार-प्रसार करता दृष्टिगत होता है । कवि का यह उद्देश्य कृति के प्रथम पद्य में स्पष्ट रूप से परिलक्षित है—

पुण्य तराण फल परतिख देखो, करो पुण्य सहु कोय जी ।

पुण्य करंतां पाप पुलावे, जीव सुखी जग होय जी ॥१॥

वर्ण्य-विषय

अरिहंत देव द्वारा निरूपित पुण्य के निम्नांकित रूपों का उल्लेख करके कवि ने उन अनेक पुण्यात्माओं का अपनी कृति में नाम-निर्देश किया है जिन्होंने पुण्यकृत्यों के संयोग से अपार आनंद, ऋद्धि-समृद्धि और मोक्ष की प्राप्ति की—अभयदान, अनुकंपादान, साधु-श्रावकों का धर्मपालन, तीर्थयात्रा करना, शील-संयम का पालन और जप-तप तथा ध्यान धारण करना; नियम पूर्वक सामायिक, पोषध, प्रतिश्रमण एवं देव पूजन तथा गुरु सेवा करना आदि ।^७

१. कृष्णे कोण अवस्था पामी, दीठउ द्वारिका दाह जी ।
माता पिता पण काढी न सक्या, आप रह्यउ वन मांह जी ॥१२॥
२. राणउ रावण सबल कहातो, नव ग्रह कीधउ दास जी ।
लक्ष्मण लंका गढ़ लूँटायो, दस सिर छेद्या तास जी ॥१३॥
३. दसरथ राय दियो देशवटउ, राम रह्यउ वनवास जी ।
बलि वियोग पञ्चउ सीतानउ, आठे पहर उदास जी ॥१४॥
४. लुब्धो मुंज मृगालवती सुं, उज्जेनी नउ राव जी ।
भीख मंगावी सूली दीधउ, कणाटि राय कहाय जी ॥१८॥
५. कृष्ण पिता नर गुरु नेमीश्वर, द्वारिका ऋद्धि समृद्धि जी ।
ढंढण ऋषि तिहां आहार न पामइ, पूर्व कर्म प्रसिद्ध जी ॥२०॥
६. संवत् निधि दरसण रस ससिहर, सिधपुर नगर मभार जी ।
शांतिनाथ सुप्रसादे कीधी, पुण्य छत्तीसी सार जी ॥३५॥

(स. कृ. कु. पृ० ५४०, पुण्य छत्तीसी)

७. अभयदान सुपात्र अनोपम, बली अनुकंपा दान जी ।
साधु श्रावक धर्म तीरथ यात्रा, शील धर्म तप ध्यान जी ॥
सामायिक पोषह पडिकमणो, देव पूजा गुरु सेव जी ।
पुण्य तराण ए भेद पख्या, अरिहंत वीतराग देव जी ॥३॥

भगवान शांतिनाथ ने अपने पूर्वभव में एक कबूतर को शरण में रखकर जो पुण्य कार्य किया उसी के परिणामस्वरूप उन्हें तीर्थंकर-सी श्रेष्ठ पदवी और अपार ऋद्धि की उपलब्धि हुई।^१ चंपक-श्रेष्ठ ने दुःकाल के अवसर पर जो दान दिया उसके पुण्य से उसे छियानवे करोड़ स्वर्ग-मुद्राओं की प्राप्ति हुई।^२ आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव को सेलड़ी रस देकर श्रेयांसकुमार भवमुक्ति पा गये थे।^३

इनके अतिरिक्त महाकवि ने पुण्याचारियों की सारिणी में इनके भी पुण्य कर्मों का उल्लेख किया है—मेघकुमार, अयवतिसुकुमाल, धन्ना सार्थवाह, चंदनबाला, सुमुख गाथापति गोभद्र सेठ, मूलदेव, बलदेव मुनि, सुव्रत साधु, सनत्कुमार, बलभद्र, ^४ वस्तुपाल-तेजपाल, कुलध्वजकुमार, सती सुभद्रा, धन्ना अणगार, रावण और श्रेणिक राजा ^५ तथा प्रदेशी ^६ आदि। इसी प्रकार के अन्य अनेक विवेकी जीव पुण्य के प्रभाव से सुखी हो चुके हैं, हैं और आगे भी होंगे।^७

(६) संतोष छत्तीसी

इस छत्तीसी की रचना कवि ने सं० १६८४ में लूणकरणसर के चातुर्मास में की थी।^८ इसमें भी कुल ३६ पद हैं।

वर्ण्य-विषय

प्रस्तुत कृति में कवि ने कहा है—संपूर्ण वैर-विरोधों से विमुक्त हो प्रत्येक सहघर्षी को दूसरे के साथ बड़े प्रेम और सौहार्द के साथ व्यवहार करना चाहिये। ऐसे व्यवहार को संतोष कहा गया है, समता कहा गया है। सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और नवकार-मंत्र आदि की सिद्धि भी रागद्वेष वालों को नहीं होती अपितु उन्हें होती है जो समता का व्यवहार करते हैं, संतोषपूर्वक रहते हैं। अरिहंत देव ने भी यही बतलाया है—

१. सरणागत राख्यउ पारेवउ, पूरव भव परसिद्ध जी।
शांतिनाथ तीर्थंकर पदवी, पाम्या चक्रवर्ती रिद्ध जी ॥४॥
२. चंपक सेठ कीधी अनुकंपा, दीधु दान दुकाल जी।
कोडि छन्नु सोनइया केरी, विलसइ रिद्धि विसाल जी ॥१५॥
३. उत्तम पात्र प्रथम तीर्थंकर, श्री श्रेयांस दातार जी।
सेलड़ी रस सूधउ बहरायो, पाम्यउ भव नउ पार जी ॥६॥
४. रूप थकी अनरथ देखी नइ, गयो बलभद्र वनवास जी।
तप संयम पाली नई पहुंतउ, पांचमइ स्वर्ग आवास जी ॥१८॥
५. रागो रावण श्रेणिक राजा, अरच्या अरिहंत देव जी।
बेहु गोत्र तीर्थंकर वांध्या, सुरनर करस्यै सेव जी ॥३२॥
६. केसी गुरु सेव्यउ परदेसी, सुर उपनो सुरिआभ जी।
चार हजार बरस एक नाटक, आगे अनंता लाभ जी ॥३३॥
७. इम अनेक विवेक धरंतां, जीव सुखिया थया जाण जी।
संप्रति छै सुखिया वलि थास्यै, पुण्य तराँ परमाण जी ॥३४॥
८. तिम संतोष छत्तीसी कीधी, लूणकरणसर मांहि जी।
भेल धयउ साहमी मांही मांहि, आणंद अधिक उच्छाह जी ॥३५॥

×

×

×

×

सामायक पोसो पडिकमणो, नित सभाय नवकार जी ।
 राग द्वेष करतां सूभइ नहीं, न पडै ठाम लगार जी ॥२६॥
 समता भाव घरी नइ करतां, सहु किरिया पडै ठाम जी ।
 अरिहंत देव कहइ आराधक, सीभइ वंछित काम जी ॥२७॥

और राग-द्वेष करने वालों को नर्क के दुःख भी भोगने पड़ते हैं। उनकी दुर्गति का कोई पार नहीं होता।

सहधर्मी का संयोग सौभाग्य से ही मिलता है। अतः उसके साथ संतोषपूर्वक रहना चाहिये। कवि का कहना है—

साहमी सुं संतोष करीजइ, वयर विरोध निवार जी ।
 सगपण ते जे साहमी केरउ, चतुर सुणो सुविचार जी ॥१॥

सहधर्मी के साथ प्रेमपूर्वक रहना, उससे अपने दोषों के लिए क्षमा मांगना, उसे हित की बात कहना, उसकी हित की बात सुनना, ये सब सहधर्मी-वात्सल्य (समता, संतोष) के अन्तर्गत आता है। इस सहधर्मी-वात्सल्य को जिन महापुरुषों ने निभाया और जिसके कारण उन्हें यश और मुक्ति लाभ हुआ, उनमें से कइयों का कवि ने अपनी कृति में स्मरण किया है।

संवत् सोल चउरासी वरसइ, सर मांहेँ रह्या चउमास जी ।
 जस सोभाग थयउ जग मांहे, सहु दीघी साबास जी ॥३५॥

वज्रजंघ राजा अरिहंत और साधु के अतिरिक्त किसी को नमस्कार नहीं किया करता था। अपने से बड़े राजा सिहोदर को भी वंदना करते समय वह अपना व्रत नहीं भूलता था और हाथ की मुद्रिकागत मुनि सुव्रत स्वामी की मूर्ति को ही उस समय नमन करता था। असा सहधर्मी जब सिहोदर के आक्रमण से आक्रांत हो रहा था, भगवान राम ने उसे सहायता देकर अपना सहधर्मी-वात्सल्य प्रदर्शित किया था।¹ ऐसे अनेक संतोषधनियों के उदाहरण कवि ने दिये हैं जिनमें से प्रमुख ये हैं—राजा उदयन और चंडप्रद्योतन भरत और बाहुबली, सागरचन्द्र और नभसेन, कोणिक और चेडा, विजयचोर, रक्मिणी और सत्यभामा, कपिल ब्राह्मण और राम-लक्ष्मण, मृगावती और चंदनवाला तथा आर्द्रकुमार और अभयकुमार।

१. अरिहंत साधु बिना प्रणामे नहीं, वज्रजघा ध्रम धीर जी ।
 सिहोदर सुं संतोष करायो, रामचंद्र करि भीर जी ॥ ८॥

×

×

सिहोदर पासे दिवरायो, रामे आघउ राज जी ।
 वज्रजंघन स्वामी जाणी नइ, सखर समास्यउ काज जी ॥१२॥

(७) आलोचना छत्तीसी

कुल ३६ पद्यों की प्रस्तुत छत्तीसी का सृजन महाकवि ने संवत् १६६८ में अहमदाबाद में किया ।^१
वर्ण्य-विषय

कृति का प्रमुख कथ्य है—शुद्ध अंतःकरण से अपने किए हुए पापों की आलोचना करने से अर्थात् पश्चाताप करने से प्राणी उनके दुष्परिणामों से मुक्त हो सकता है । शुद्ध हृदय से कहा गया 'मिच्छामि दुक्कडं' अनेक पापों के पलायन में समर्थ है चाहे वह कितने ही भयंकर और दुष्परिणामप्रद क्यों न हों ।^२ किंतु इस 'मिच्छामि दुक्कडं' करने के पश्चात् मुक्तिकामी को उस अकृत्य को सदा के लिए न करने का व्रत ले लेना चाहिए ।^३

इसके साथ ही कवि ने उन कृत्यों का भी उल्लेख किया है जिनके करने से जीव पाप का मागी होता है । उनमें प्रमुख हैं— असत्य-भाषण, चोरी, परदारगमन और किसी निरपराधी का अकारण जीव-हनन करना आदि । जो लोग मिथ्या भाषण करते हैं अथवा किसी को मिथ्या कलंक लगाते हैं उनके गले में गलजीभी जैसा रोग हो जाता है जिसके कारण मुंह टेढ़ा हो जाया करता है ।^४ जीभ के स्वाद के लिए मारा गया प्राणी भव-भव में अपने अपराध का बदला लेता है, अपने हत्यारे के साथ युद्ध करता है और उसे मार डालता है ।^५ लगभग ऐसी ही दुर्गति चोरों की हुआ करती है ।^६

परदार-सेवन जैसे दुष्कृत्यों के क्षणिक सुख में मस्त रहने वाले काम-कीटों को नर्क में गर्म की हुई लौह-पुतली का आलिंगन करने जैसी अनेक यातनाएं सहनी पड़ती हैं—

परस्त्री नइ भोगवी, तुच्छ स्वाद तू लेसि ।

पिए नरके ताती पूतली, आलिंगन देसि ॥१५॥

घाणी, घटी ओखली में कई बार असावधानी से छोटे-छोटे जीवों की हत्या हो जाती है । यदि उनके लिअे क्षमापना (पापालोचना) नहीं की जाती है तो जैसे प्राणी को नर्क में घाणी के अन्दर पील दिया जाता है—

१. संवत् सोल अट्टारगूए, अहमदपुर माहि ।

समयसुंदर कहइ मइ करी, आलोचना उच्छाहि ॥३६॥ (स. कृ. कु. पृ० ५४७)

२. पाप आलोय तू आपणां, सिद्ध आतम साख ।

आलोयां पाप छूटियइ, भगवंत इणि परि भाख ॥१॥

३. मिच्छामि दुक्कडं देइ नै, पछइ लेजे तू सूंसि ॥२६॥

४. भूठ बोल्या घणा जीभड़ी, दीघा कूड कलंक ।

गलजीभी थास्यै गलै, हुस्यइ मुंहडों त्रिबंक ॥१३॥

५. जीभ नइ स्वाद मार्या जिके, ते मारस्यइ तुज्भ ।

भव मांहे भमता थका, थास्यै जिहां तिहां जुज्भ ॥१२॥

६. परधन चोरघा लूटिया, पाक्यउ धसकउ पेट ।

भूख्यो भमि संसार मां, निर्धन थकउ नेट ॥१४॥

घाणी, घट्टी ऊंखले, जीव जे पीड़ेसि ।
खामिस तूँ नहिं तरि नरक मइं, घाणी मांहि पीलेसि ॥१७॥

अतः कवि कहता है, इस प्रकार के पाप जिस किसी ने इस भव अथवा पर-भव में किए हों वह उन पापों का नाम ले-लेकर क्षमा-प्रार्थना (आलोचना) करके पश्चाताप करे जिससे उन पापों से छुटकारा मिल जाय—

इण भव परभव एहवा, कीधा हुवे जे पाप ।
नाम लेइ तूँ खामजे, करिजे पछताप ॥३४॥

पापालोचन में न तो कोई खर्च होता है एवं न ही किसी प्रकार का शारीरिक श्रम ही करना पड़ता है अतः इसमें कभी ढील नहीं करनी चाहिए । आलोचना के पश्चात् मन को वैराग्य की ओर उन्मुख कर लेना चाहिए जिससे सही सुख की प्राप्ति हो सके—

खरच कोई लागस्ये नहीं, देह में नहिं दुख ।
पण मन वैराग वाल जे, सही पामिस सुख ॥३५॥

जो लोग जीवन भर अपने राग-द्वेषों के लिम्बे क्षमापना नहीं करते, वे अनंत काल तक भव-भ्रमण से मुक्त नहीं हो सकते—

राग द्वेष खाम्या नहीं, जां जीव्यउ तां सीम ।
अनंतानुबंधी ते थया, कहि करिस तूँ केम ॥२१॥

